शोध मंथन Vol. XII No.III July-Sep. 2021 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

भारतीय संस्कृति संगीत एवं कौशल विकास

डॉ० रश्मि गुप्ता
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संगीत विभागाध्यक्षा,
सी०एम०पी० पी०जी० कॉलेज,
प्रयागराज
ईमेलः *drsurendra@gmail.com*

प्राप्तिः 17.08.2021
स्वीकृतः 10.09.2021

सारांश

भारतीय संस्कृति में शब्द के अनुरूप ही जीवन शैली की सभी क्रियाओं को समाहित किया गया है, उदा0—व्यवहार, शिक्षा, संगीत, कला व कौशल आदि। संस्कृति की प्रबल पहचान भारतीय साहित्य में भी झलकती है। इसी भारतीय संस्कृति में कला का भी विशेष योगदान रहा है। भारतीय कला, विशेष तौर पर संगीत में तो सदैव ही अपनी विशिष्टता के कारण प्रभाव में रही है। संगीत के अलावा अन्य कलाओं ने भी भारतीय संस्कृति को सर्वप्रिय बनाया है। भारतीय कला में हम उन सब वस्तुओं को सम्मिलित करते हैं जो हमारे जीवन में प्रयोग में लाई जाती हैं। यह कलाएँ भारत के विचार, तत्वज्ञान एवं संस्कृति का दर्पण हैं। भारतीय जीवन की विस्तृत व्याख्या इन्हीं कलाओं के माध्यम से सम्भव हो पायी हैं। यह संस्कृति अपने संगीत और संस्कारों को लेकर आगे चलती गई और इसीलिए संस्कृति और संस्कारों को यहाँ एक साथ देखा जाता है। संस्कारों की यही परिकल्पना भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। भारत की एक अन्य जीवनदायिनी कड़ी है— "हमारा भारतीय संगीत"। इसमें पशु—पक्षियों के स्वरों से लेकर धर्म की मान्यताओं का भी समावेश है। यह संगीत मानव समाज की कलात्मक उपलब्धि है जो कि सांस्कृतिक परम्पराओं का मूर्तिमान प्रतीक रही हैं। इस प्रकार भारतीय सभ्यता, संस्कृति और संगीत एक ही माला के विभिन्न मोती हैं। यह कलाएँ मनुष्य के मन में अन्तर्निहित भावनाओं की उल्लासपूर्ण अभिव्यक्ति है, अलग—अलग रूपों में प्रस्फुटित होकर मनुष्य के सांस्कृतिक विकास में सहायक सिद्ध होती है।

अतः इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए मैंने इस विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं, जिसका विवरण मेरे मुख्य प्रपत्र के द्वारा प्रस्तुत किया जाएगा।

मूल बिन्दु

संस्कृति, भारतीय संगीत, कला—कौशल, अभिव्यक्ति, मानव—समाज।

हमारी भारतीय संस्कृति विश्व की सर्व प्रशंशित एवं अत्यन्त प्राचीनतम संस्कृति है। जिस समय मूल—चेतना का उदय होता है, उसी समय संस्कृति का आविर्भाव होता है। संस्कृति से हमारा जीवन उज्जवल और मूल्यवान होता है।

ठाकुर जयदेव सिंह के अनुसार

'संस्कृति के स्तर का माप उसकी कला द्वारा होता है। किसी भी राष्ट्र के काव्य, गीत, चित्र इत्यादि से पता चल जाता है कि उस राष्ट्र की संस्कृति किस स्तर की है।'[1]

भारतीय संस्कृति की जीवन्त परम्पराओं में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इस संस्कृति में संगीत को एक अत्यन्त उच्च कोटि की कला माना गया है जो मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ ललित कला के रूप में प्राप्त हुई है।

हिन्दुस्तानी संगीत मानव समाज की एक सहज कलात्मक उपलब्धि है जो कि सांस्कृतिक परम्पराओं का मूर्तिमय प्रतीक है। परम्परा शास्त्रीय कला को जीवन्त अनुभव प्रदान करती है। इस परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए गायन और वादन में मौलिकता की अभिव्यक्ति ही हिन्दुस्तानी संगीत की विशिष्टता है।

डॉ0 महावीर प्रसाद के शब्दों में

'संगीत आदि कलाएँ संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग हैं, वास्तव में हमारी संस्कृति में एकीकरण की विशेष क्षमता है, वह इसे अन्य कलाओं से प्राप्त हुई है। इसलिए संगीत और दूसरी कलाओं को प्रोत्साहन देना भारतीय संस्कृति को उन्मत करने के समान माना गया है।'[2]

वर्तमान परिस्थितियों में कला एवं संस्कृति के अर्थ एवं मूल्य में बहुत से परिवर्तन आये हैं। अपनी चेतना द्वारा सौन्दर्य तत्वों का स्पर्श और उद्घाटन हमारे संस्कार और कार्य अथवा कला कौशल पर निर्भर करता है। कौशल विकास वर्तमान समय में भारतीय कला साधकों हेतु अति आवश्यक है। क्योंकि कलाएँ संस्कृति से भिन्न नहीं होतीं वरन् वे संस्कृति को गढ़ती हैं। अपने समय की समस्त कलाएँ चाहे वह नाटक हो या नृत्य हो, संगीत हो, मानवीय अभिव्यक्ति का कोई भी रूप हो, उनसे संस्कृति निर्मित होती है। अपना स्वरूप ग्रहण करती है एवं उसमें सतत् चली आ रही है परम्परा जुड़ती है, जो एक समय के बाद एक पुष्ट संस्कृति के नाम से अभिहित होती है।

कलाएँ मौलिकता, प्रकृति एवं परम्परा से सृजित होकर एक नवीन परम्परा को निर्मित करती हैं और एक समानान्तर संसार को रचती है, जो न तो होता है, न हुआ है। कला का आशय एवं लक्ष्य यही है जो सहृदय के आत्मा को परिश्कृत करे। अपने जन्म से कला एक ही रही है जो बाद में क्रिया के भेद से से अनेक रूपों में उद्भुत हुई है।

कला का कौशल से यानी कुशलता का सम्बन्ध शिल्प की सजगता और अपनी कला के सन्धान में निपुणता प्राप्त करने से ही है, जिसका लक्ष्य अर्धसिद्धि नहीं आत्मसिद्धि होता है। यानी शिल्प या कौशल सिर्फ एक साधन है। अर्थात् कलाओं में कौशल का विकास अनिवार्य है और वह सब सम्भव है जब कलाकार अपनी कला की वस्तु और उसके शिल्प के प्रति सजग रहे। क्योंकि जब अपनी भाषा के प्रति राग उत्पन्न होगा, संस्कृति के प्रति प्रेम उत्पन्न होगा तभी अपनी कलाओं से भी अनुराग होगा। उस स्थिति में हमारी कलाओं से जुड़े कर्मी आर्थिक रूप से भी स्वावलम्बी हो सकेंगे। कौशल विकास एक ऐसी तकनीक है जो आवश्यकता के आधार पर विकसित होती है। आधुनिक समय में आत्मिक विकास से जुड़ी इन संचीय कलाओं ने प्रयोग के साथ ही रोजगार के अवसर भी जुटाए हैं। इन ललित कलाओं से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़े हुये ऐसे बहुत से क्षेत्र हैं, जिन्हें व्यवसाय के रूप में अपनाकर

कला की सेवा करने के साथ ही साथ व्यवसाय भी किया जा सके। जैसे– कलाकार आयोजक, रचनाकार, गीतकार, निदेशक, वाद्ययन्त्रों का निर्माण, पत्रकारिता इत्यादि।

इस प्रकार जन मनोवृत्ति को अपनी ओर करने में कला एवं कलाकार का उपयोग होता है इस दृष्टि से कला के द्वारा कुछ अर्जित करने के विविध आयाम दृष्टिगत होते हैं। पाणिनि में ललित कलाओं के लिए शिल्प शब्द का प्रयोग मिलता है जो कला कौशल का बोधक है। शिल्प का पाणिनी में विभाजन दो विभागों चारू एवं कारू के रूप में किया गया है। जिसे बाद में ललित एवं उपयोगी कला कहा गया। चारू शिल्प के अन्तर्गत संगीत आदि ललित कलाओं का अन्तर्भाव था एवं कारू शिल्प के अन्तर्भूत–कुम्भकार, लुहार आदि थे।

'ललित कला' में ललित शब्द लालित्य का द्योतक है। इसमें समग्रहित सभी कलाओं की अनेक विशेषताएँ समान है। प्रत्येक कला अपने चरम विकास के क्षणों में अन्य भगिनी कलाओं का आश्रय ग्रहण करती है एवं जब ये कलाएँ एक–दूसरे का सहयोग लेकर प्रस्फटित होती है तो परसपर भेद विलीन हो जाते हैं। क्योंकि ललित कलाओं में सौन्दर्य, रसानुभूति, सहजता, सन्तुलन, लय, ताल आदि समान रूप से स्थिर होते हैं। संस्कृति के इन कला दर्शन के परिपेक्ष्य में संगीत, नृत्य, मूर्तिकला में अटूट प्रेम दिखता है। भारतीय दृष्टि में कवि, संगीतकार, चित्रकार आदि की पारस्परिक दृष्टि सौहार्दपूर्ण रही है तथा सभी कलाओं का लक्ष्य भावाभिव्यक्ति ही है।

शिवसूत्र विमर्शिनी में क्षेमराज ने कला को इस प्रकार परिभाषित किया है–

'कलयति स्वस्वरूपावेशेन तत्वदवस्तु परिच्छिनत्ति इति कला व्यापारः।'[3]

अर्थात् जो नव–नव स्वरूपसंवित् वस्तुओं में या प्रमाता के स्व को, आत्मा को परिमित करती है, इसी क्रम को कला कहते हैं।

कला से हमारा आत्म प्रत्यक्ष प्रखर होता है। इससे शिक्षा व संस्कृति, समाज के लिए कला का मूल्य मानवता के लिए स्वीकार किया जा रहा है। कला का क्षेत्र मात्र कला तक सीमित नहीं है, बल्कि पूरी सत्ता उसका क्षेत्र है, संस्कृति भी। कला स्वयं न केवल संस्कृति की एक उपलब्धि है बल्कि वह विकास की इस प्रक्रिया में बहुत योगदान देती है। यह दोनों ही मानव की सभ्यता की राह को निर्देशित करती है। क्योंकि प्राणी के हृदय में जो भी भाव उत्पन्न होते हैं, उनका उद्धार प्रस्तुत करना संस्कृति है।

टी0एस0 इलियट ने संस्कृति को इस तरह परिभाषित किया– **'संस्कृति में भाषा, कला, संगीत, साहित्य, दर्शन और धर्म सभी का समावेश है।'**[4]

संस्कृति एक ऐसा शब्द है जिसके अर्थ की परिधि बहुत व्यापक है। किसी भी समाज की समस्त श्रेष्ठतम साधनाओं का एकीकृत रूप वहाँ की संस्कृति है। संस्कृति हमेशा से ही सार्वभौमिक व समग्र होती है और अपने परम लक्ष्य के रूप में हमेशा मनुष्य कल्याण करती है।

डॉ0 बी0एस0 पण्डित द्वारा सम्पादित 'अमित स्टूडेण्ट ऑक्सफोर्ड शब्दकोश में संस्कृति का अभिप्राय किसी व्यक्ति, जाति, राश्ट्र आदि की वे सब बातें जो रूचि, आचार–विचार, कला–कौशल, शुद्धि, सफाई, संस्कार, सुधार आदि के सन्दर्भ में लिया गया है।'[5]

संगीत एक बहुआयामी कला है, जिसमें कला का सौन्दर्य, दर्शन की गहनता,

विज्ञान की वैज्ञानिकता आदि विद्यमान है। मानव के कौशल विकास में संगीत विभिन्न क्षेत्रों में अपना अपूर्ण योगदान दे रहा है। कहीं मानसिक विकास, व्यक्तित्व विकास, सामाजिक विकास तो कहीं चिकित्सीय विकास इत्यादि। 'भारतीय साहित्य शास्त्र की परम्परा में संगीत को सृजन की उस कला के साथ सहयोगी के स्वरूप में लिया गया है जो आत्मरंजन की पूर्ति करता है और कर्ण सहित चित्त को अप्रतिम सुख प्रदान करता है। वैदिक काल से ही संगीत को दैव कृपा प्रदायक और साधक को सर्वसुख प्रदायक विधि के रूप में देखा गया है, चूँकि यह विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित गांधर्वों द्वारा गेय होता रहा, अतः उसे गांधर्ववेद के नाम से भी अभिहित किया गया है।'[6]

'संगीत यश व कौशल का एक महाकाव्य है जो एक प्रभावशाली अनुशासित विजय गाथा की तरह है।'[7]

—रोमेनरोलेण्ट

प्रत्येक कला का लक्ष्य भौतिक संसार से ऊपर उठकर अलौकिकता को प्राप्त करना है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने भौतिकवाद से भी ऊपर एक अनन्यसुख को महत्व दिया है जो आत्मिक सुख के नाम से जाना जाता है। यदि मानव संगीत की सुमधुर स्वर लहरियों में अपने को आत्मसात् कर लेता है तो आत्मिक सुख को प्राप्त कर सकता है। वेद मंत्रों में संगीत के स्वरों का अधिष्ठान है तथा इसके साहचर्य से ही आध्यात्मक द्वारा परमात्मा की प्राप्ति किया जाना सम्भव है।

वैदिक युग में संगीत की दो धाराएँ प्रवाहमान थीं– वैदिक एवं लौकिक। वैदिक संगीत यज्ञयागादि तक सीमित धार्मिक संगीत था जिसके अन्तर्गत ऋक, यजु, साम एवं निगद मंत्रों का सस्वर पठन या गायन किया जाता था। लौकिक प्रसंगों पर गायन, वादन एवं नष्त्य के रूप में किया जाता था। वैदिक काल में 'सामगान' के विधिवत् प्रशिक्षण की परम्परा थी। 'सामवेद' के अतिरिक्त अन्य वैदिक शाखाओं में भी सामगान की अल्पाधिक शिक्षा अनिवार्य रूप से दिए जाने का प्रावधान था। अतः वैदिक काल में संगीत का प्रचलन था, इसका प्रचुर प्रमाण हमें वेदों से प्राप्त होता है। कहा जाता है कि देवताओं व ब्रह्मा जी ने ऋग्वेद से पाठ्य साम वेद से गीत यजुर्वेद से अभिनय एवं अथर्ववेद से रस लेकर नाट्य वेद की उत्पत्ति की जिसे पांचवां वेद भी कहा गया है।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति अपने संगीत व संस्कारों को लेकर आगे बढ़ी है। मनुष्य के जन्म के समय संस्कार कर्म द्वारा ही उसे परिश्कृत किया गया है। जीवन को सही ढ़ंग से जीने के लिए साधन व शैली उसे संस्कृति से मिलवाते हैं।

विश्व के उदारमना विद्वतजन इसी का दर्शन, ज्ञान प्राप्त करने हेतु यहाँ आते रहे हैं। इस सबका संवर्धन करने वाली विधा कला ही है। जो संसार भ्रमणकारी व्यक्तियों को यहाँ आने, देखने और समझने पर विवश कर देती है। अतः संस्कृति और कला का सम्बन्ध अटूट है। कला ही संस्कृति और संस्कृति ही कला है। क्योंकि किसी भी मनुष्य जाति या राष्ट्र के तीन मूल स्तम्भ होते हैं, उसकी सभ्यता, संस्कृति एवं संगीत इन्हीं तीनों कारकों के आशीष से जीवन का दर्शन ही नहीं अपितु स्वयं को जीवित व ऊर्जावान रखने की एक प्रक्रिया है।

अतः किसी भी राष्ट्र की कलाओं को वहाँ की संस्कृति का दर्पण कहना गलत न होगा। इस दृष्टि से संगीत को भी संस्कृति का आइना कहना अनुचित न होगा क्योंकि संगीत न केवल एक कला है अपितु एक ललित कला है।

सन्दर्भ–सूची

1. सिंह, डॉ0 ठाकुर जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, (वाराणसी विश्वविद्यालय प्रकाशन, द्वितीय संस्करण,–2010), पृष्ठ संख्या–7
2. वर्मा, डॉ0 राजीव, भारतीय संगीत का आध्यात्मिक स्वरूप (दिल्ली– अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण–2004), पृष्ठ संख्या–11.
3. नाहर, डॉ0 साहित्य कुमार, भारतीय शास्त्रीय संगीत : मनोवैज्ञानिक आयाम, (दिल्ली–प्रतिभा प्रकाशन प्रथम संस्करण–1999), पृष्ठ संख्या–11.
4. पुरी, डॉ0 मृदुला, संगीत मीमांसा, (नई दिल्ली–सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस), प्रथम संस्करण–2007, पृष्ठ संख्या–9.
5. दत्ता, डॉ0 पूनम, भारतीय संगीत : शिक्षा और उद्देश्य, (दिल्ली– राज पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण–2005), पृष्ठ संख्या–92.
6. स्वर सरिता, अंक–5, 1 जुलाई, पृष्ठ संख्या–9.
7. मित्तल, अंजलि, भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं संगीत, (दिल्ली–कनिश्क पब्लिशर्स, प्रथम संस्करण–2003), पृष्ठ संख्या–4.